International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 2, February 2018
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

वैदिक साहित्य में यक्ष

डॉ सुदेश कुमारी असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत शिक्षण)

ज्ञान भारती कॉलेज ऑफ एजुकेशन इन्द्री(करनाल)

'यक्ष' शब्द संस्कृत में यक्ष, यक्षी, यक्षिणी; पालि में यक्खं, यक्खी, यक्खिणी; प्राकृत में जक्खन ,जक्खिणी के रूपों में प्राप्त होता है। तत्कालीन साहित्य में यक्ष का एक जाति के रूप में वर्णन मिलता है। जिसने देवों के समान आदर–सम्मान प्राप्त कर लिया था तथा इसकी गणना भी देवयोनीके अन्तर्गत की जाने लगी थी। इसकी पुष्टि अमरकोष के अधोलिखित श्लोक से हो रही है –

विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व किन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।।[1]

इस प्रसंग में **'यक्ष'** शब्द के विभिन्न अर्थों का विकास जानना आवश्यक है।**'यक्ष'** शब्द की व्युत्पत्ति शीघ्रता से प्रकट होने के अर्थ में ;जवउंदपमिजद्धकी जा सकती है, जो आश्चर्यजनक प्राणीके रूपमें वर्णित हुआ है और यह अपने को एकदम से प्रकट कर सकता है।[2]यक्ष पद को मुख्य रूप से **'पूजा'** व **'यज्ञ'** के अर्थ में प्रयुक्त पाया गया है।[3]**'यक्ष'** शब्द यक्ष धातु से कर्म में **'घञ्'** प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है।[4]कुछ स्थानों पर **'यक्ष'** शब्द **'भूत'** के अर्थ में भी प्राप्त होता है।[5]

संहिताओं में यक्ष

सभी वैदिक संहिताओं में **'यक्ष'** पद का वर्णन आया है। वैदिक मन्त्रों में यह एक जातिविशेष के परिचायक के रूप में स्पष्ट रूप से तो वर्णित नहीं हुआ परन्तु वहाँ इसका स्वरूप किसी जाति के क्रमिक रूपधारण के आद्य रूप जैसा है।

'यक्ष'शब्द **'ऋग्वेद'** में कई बार प्रयुक्त हुआ है तथा यह जिन अर्थों में जातिपरक स्पष्ट विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। यहाँ केवल **'यज्ञ', 'पूज्य','दान'** एवं 'पूजनीय धन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[6]

ऋग्वेद में उपलब्ध **'यक्ष'** शब्द के प्रयोगों का विवेचन सर्वप्रथम किया जाना अपेक्षित है–

अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यां मत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतिरहिंमाया अभिद्यून्।।[7]

यहाँ उपलब्ध **'यक्षभृत'** पद का अर्थ वेंकटमाधव ने **'पूजाया भर्ता स्तोतारं बिभर्तीति वा विविधप्रज्ञानः**'किया है, सायण ने याज्ञिक दृष्टि से **'पूजितं हविरादिकं दधानः'** एवं स्वामी दयानन्द ने व्यावहारिक दृष्टि से **'यक्षान् पूज्यान् विदुषो बिभर्ति सः'** किया है। ये तीनों ही अर्थ गुणवाचक हैं, जातिवाचक नहीं है।

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः।
माभ्रातुरग्ने अनृजोऋणं वेर्मा सख्युद्रक्षं रिपोर्भुजेम।।[8]

इस मन्त्र मे **'यक्ष'** का अर्थ वेंकट ने **'धनम्'**एवं सायण ने याज्ञिक दृष्टि से **'यज्ञ'** व दयानन्द ने व्यावहारिक दृष्टि से**'सैं.न्तव्यम्'** (प्राप्त होने योग्य) किया है। यहाँ कोई भी अर्थ जातिवाचक नहीं है।

मा कस्यादभ्रक्रतू यक्षं भुनेमा तनूभिः।मा शेषसा मा तनसा।।[9]

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

उपर्युक्त मन्त्र में **'यक्ष'** का अर्थ वेंकट ने **'वित्तं'** तथा सायण ने **'पूजितं धनं',** मुद्गल ने भी**'पूजितं धनं'**किया है जबकि दयानन्द ने व्यावहारिक दृष्टि से**'दानम्'** अर्थ किया है। इस प्रकार तीनों अर्थ समान से हैं परन्तु जातिवाचक कोई भी नहीं है।

अत्यासो न ये मरूतः स्व×चों यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः।

ते हर्म्येष्ठाः शिशवों न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीलिनः पयोधाः।।[10]

प्रस्तुत मन्त्र में **'यक्षदृशों'** का अर्थ वेंकटमाधव ने **'यक्षा इव दृश्यमाना',** यक्षा इव अलंकारैरंगानि ये शुभयन्तः, सायण ने **'यक्षस्योत्सवस्य द्रष्टारो'** एवं दयानन्द ने व्यावहारिक दृष्टि से **'यक्षान् पूजनीयान् पश्यन्ति'** किया है। इस प्रकार यहाँ तीनों ही अर्थ जातिवाचक प्रतीत होते हैं एवं इन अर्थों से इंगति होता है कि संभवतः यक्ष एक जाति थी।

अमुरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम्।

द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन्।।[11]

इस मन्त्र में वेंकटमाधव ने **'यक्षम्'** का अर्थ 'नानारूपम् अदभूतं न भूतं मनुष्यैर्न दृश्यते'; सायण ने 'पूजा' तथा सातवलेकर ने **'सत्कार'** किया है। यहाँ पर वेंकटमाधव द्वारा किया अर्थ जातिवाचक है जबकि अन्य दोनों अर्थ गुणवाचक हैं।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते।

मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धिष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम्।।[12]

यहाँ वेंकटमाधव ने **'यक्षिन्'** का अर्थ **'हे पूजावन्'य**सायण ने 'हे यजनीय' तथा सातवलेकर ने **'पूजनीय देव'** किया है। यहाँ पर तीनों ही अर्थ जातिवाचक न होकर गुणवाचक हैं।

वैश्वानंर कवयों यज्ञियासो अग्निं देवा अजनयत्रजुर्यम्।

नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम्।।[13]

इस मन्त्र अर्थ वेंकट ने **'यजमान'(यक्षस्याध्यक्षं यजमानस्य अध्यक्षं)** किया है। सायण ने **'यक्षतिः पूजार्थः'** एवं श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने **'पूजनीय देव'** किया है। यहाँ पर **'पूजनीय देव'** अर्थ जातिवाचक प्रतीत होता है जबकि अन्य दोनों अर्थ गुणवाचक है।[14]

इन प्रकार उपर्युक्त वर्णित मन्त्रों में **'यक्ष'** शब्द विभिन्न भाष्यकारों के अनुसार यज्ञ, धन, पूजा, सत्कार, दान, यजमान आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है तथा **'यक्षिन्'** का अर्थ **'पूजनीय देव'** प्राप्त होता है। इसी प्रकार **'यक्ष'** (पु.) लौकिक संस्कृत एवं पालि साहित्य में देव और देवता के समान अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। उपर्युक्त मन्त्रों में यक्ष शब्द का उल्लेख गुणवाचक व कुछ स्थलों पर जातिवादक भी हुआ है। जहाँ भी जातिवाचक प्रयोग है वहाँ वह पूजनीय व सम्मानजनक अवस्था में है।

इसके अतिरिक्त यक्षों की सुन्दरता के आदर्श के रूप में भी प्रस्तुत किया है। जैसे VII. 56.16 में **'यक्षदृश्'** का अर्थ वेंकटमाधव ने **'यक्षों के समान अलंकृत दिखने वाले'** और **'यक्षों के समान दिखने वाले किया है।'** जिससे ज्ञात होता है। कि **'यक्ष'** सुन्दर व अंलकृत होते थे। इसी मन्त्र में सायण ने **'यक्षदृशः'** का अर्थ **'यक्षस्योत्सवस्य द्रष्टारो'** किया है। यहाँ से यक्ष–उत्सव का संकेत प्राप्त होता है, सम्भवतः यह **'यक्ष'** जाति का कोई उत्सव–विशेष रहा होगा जिसका वर्णन पालि साहित्य में अनेकशः प्राप्त होता है।

कुमारस्वामी ने **'यक्षदृशः'** का अर्थ **'सहसा प्रकट होने वाले प्राणी'** और **'अदृश्य–शत्रु'** के रूप में किया है।[15]

इस प्रकार इन वर्णनों के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में कोई पूजनीय जन–समूह यक्ष जाति का स्वरूप धारण करने की प्रक्रिया में तथा अवान्तर काल में उसका वर्णन जाति के रूप

मे प्राप्त भी हुआ है। यजुर्वेद में भी **'यक्ष'** शब्द आया है तथा वहाँ यह मन के विशेषण के रूप में **'पूजनीय'** अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[16]

शुक्लयुजर्वेदीय माध्यन्दिन–संहिता में भी **'यक्षि'** पद देवताओं की समानान्तर सत्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[17]

सामदेव की कौथुमी–संहिता में पूजार्थक **'यक्षि'** शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।[18]

अथर्ववेद की शौनक–संहिता में **'यक्ष'** शब्द का प्रयोग **'पूजनीय देव'** के साथ–साथ **'आत्मा'** के अर्थ में भी दृष्टिगोचर होता है।

'पृथ्वी में जो एक व्यापक यक्ष है वह कौन सा है? और एक ऋतु कौन सी है?[19]पृथ्वी में व्यापक यक्ष एक ही है और ऋतु भी एक ही है जिनमें न्यूनाधिक्य नहीं रहता।[20]' यहाँ पर **'यक्ष'** शब्द सर्वव्यापक परमात्मा के वशवर्ती–रूप में आया है। यहाँ पर कहा गया है कि सर्वव्यापक 'यक्ष' एक ही है। जीवात्मा के अर्थ में भी **'यक्ष'** शब्द इसी सूक्त में मिलता है, यथा

'हे' ऋषियों! जिसके चलने पर सब यज्ञ चलते हैं, जिसके स्थिर रहने पर समस्त स्थिर रहते है, जिसके नियम और सहायता के कारण **'यक्ष'** (पूजनीय देव) चलता है वह महान् आकाश में विराड् है।[21]इस मन्त्र में दो पदार्थो का उल्लेख है, एक **'यक्ष'** और दूसरा विराड्। मन्त्र से स्पष्ट कहा है कि विराड् के नियम तथा प्रभुत्व में यक्ष रहता है अर्थात् विराड् महान् है और यक्ष उसमें लघु। यहाँ पर स्त्रीलिंग–वाची **'विराड्'** शब्द परमात्मा की परम शक्ति का वाचक है क्योंकि वह परम आकाश में व्याप्त है। यहाँ **'यक्ष'** शब्द जीवात्मा का प्रतीक है। विराड् शब्द **'तेजस्विता'** का भाव बता रहा है तथा **'यक्ष'** पूज्यता का। जीवात्माओं की गति परमात्मा के नियम और साहाय्य से होती है।[22]

आत्मा अर्थ में प्रयुक्त यक्ष पद का उदाहरण देखिए– ''जिसमें आठ चक्र है, नौ द्वार हैं ऐसी देवों की अयोध्या नगरी है। इसके तेजस्वी कोश में प्रकाशमय स्वर्ग है। इसी तेजस्वी कोश में आत्मवान् यक्ष है।''[23]

भाव यह है कि स्वर्गधाम हमारे शरीररूपी अयोध्या के हदयकोश में है और वही पर 'आत्मवान् यक्ष'' विराजमान है यही 'यक्ष' ब्रह्म का प्रकट रूवरूप है, मानों प्रतीकरूप में ब्रह्मा ने देवों का अहंकार दूर करने हेतु यक्ष का अवतार लिया हो।[24]

आचार्य शंकर ने अपने केनोपनिषद्–भाष्य में 'यक्ष' शब्द का अर्थ 'पूज्य' किया है।[25] सातवलेकर का मत है कि केनोपनिषद् में उल्लिखित 'यक्ष' निर्गुण ब्रह्मा का सगुण रूप है।[26] अथर्ववेद में इसके स्थान को ब्रहापुर कहा है।[27] इस पूरी की विशेषता यह थी कि इसमें अमृत का निवास माना जाता था। यक्षों का सम्बन्ध अमृत से है इसी कारण ब्रह्मपुरी को अपराजित भी कहा गया है तथा माना गया है कि इस पुरी में हिरण्यकोष था।[28]

'महत' विशेषण भी यक्ष के लिए अनेकशः प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद का मन्त्र है–**'महद् यक्षं भुवनस्य मध्य तस्मै बलिं राष्ट्रभृतों भरन्ति'**[29](भुवन में बीच में कोई महत् यक्ष विद्यमान है) उसे सभी राष्ट्रधर बलि देते है। अथर्ववेद में ही वरूण, ब्रह्म अथवा प्रजापति के सम्बन्ध में कहा गया है। 'इस विश्व के मध्य में बड़ा पूज्य देव' (यक्ष) है, ताप–उष्णता देने में विशेष कान्ति वाला जो सलिल के पृष्ठभाग में है'।[30]

इसके अतिरिक्त अधोलिखित मन्त्र में भी यह पूज्य 'अर्थ' में है–

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरवृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।।[31]

अर्थात् नौ द्वारा वाला पूण्डरीक तीन गुणों में आवृत है उसमें जो पूजनीय आत्मा वाला स्थान है उसको ब्रहावेत्ता जानते है। XI.2.24 में महादेव (पशुपति) के 'जल में स्थित पूजनीय स्वरूप' के लिए 'यक्ष' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[32]XI.6.10 में भी 'यक्ष' शब्द का अर्थ 'पूज्य' प्राप्त होता है[33]जबकि XX.128.12 में 'यक्षाय' शब्द का 'यज्ञाय' पाठभेद तीन पाडुलिपियों में प्राप्त होता है। जिसके आधार पर यक्षाय और यज्ञाय को स्थानापन्नवत् एवं पर्यायवत् माना जा सकता है।

इस प्रकार अथर्ववेद में ब्रह्मा के पर्याय रूप में यक्ष पद प्राप्त होता है तथा ब्रह्मा पद प्राप्त होता है तथा ब्रह्म के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त भी है। इसके अतिरिक्त 'यक्ष' का 'आत्मा' अर्थ में भी प्रयोग मिलता है। एवं कहा गया है कि जो इसको जान लेता है वह ब्रह्मवेत्ता हो जाता है इसको 'पूजनीय देव' भी कहा है।

इन सब तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष को आत्मा का द्योतक भी माना गया है एवं ब्रह्म का परमात्मा का। ब्रह्म का प्रकट स्वरूप यक्ष है। ब्रह्म के लिए प्रयुक्त यक्ष शब्द 'ब्रह्मयक्ष' के तथ्य का पुष्ट करता है। जो बाद में जैन–साहित्य में अनुप्रयुक्त हुआ है।

इस प्रकार संहिताओं में यक्ष शब्द का गुणवाचक एवं कुछ स्थलों पर जातिवाचक किन्तु अधिकांशतः 'पूज्य' अर्थ में प्रयोग किया गया है इसके अतिरिक्त यह आत्मा के द्योतक के रूप में भी प्राप्त होता है। संहिताओं के वर्णनों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यक्षों का एक भावनात्मक–सा पक्ष था उसी प्रकार जैसे कि वर्तमान में भूत–प्रेतों के विषय में एक असामान्य–सी छवि हमारे मस्तिष्क में विद्यमान है। धीरे–धीरे इस भावनात्मक पक्ष ने समय के साथ–साथ एक जाति का रूप धारण कर लिया था, जिसका वर्णन अवान्तरकालीन बौद्ध–जैन साहित्य में भी प्राप्त होता है।

ब्राह्मणों व आरण्यकों में यक्ष

वैदिक–संहिताओं में यक्षों को अद्‌भुत, सुन्दर, स्वरूपवान्, महान् और पूज्य देव माना गया है। ब्राह्मणों, उपनिषदों व बौद्ध–साहित्य में कहीं न कहीं हर वैदिक देवता को यक्ष कह कर पुकारा गया है।[34]

यक्षों की यह छवि बाद के वैदिक–साहित्य में भी रही। ब्राह्मण–ग्रंथो में यक्ष कुछ समय के लिए प्रकट होते है और उनका स्वरूप 'आश्चर्यजनक'[35] होता है। वे सुन्दरता के आदर्श होने पर भी क्रूरजन माने गये है।[36]

तैत्तिरीयब्राह्मण में 'यक्ष' शब्द का प्रयोग 'पूज्य' अर्थ में किया है।[37] एक अन्य स्थल पर वर्णन है कि ब्रह्म तपस्या से पूज्य हुए एवं वहाँ 'पूज्य' अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए 'यक्ष' शब्द का प्रयोग किया है।[38]

षड्‌विंशब्राह्मण में निमित्तविशेष (प्रायश्चित्त) को लेकर यक्षाधिपति कुबेर (वैश्रवण) के लिए किये जाने वाले होम का उल्लेख है।[39]

शतपथब्राह्मण[40] में उल्लेख है कि जो 'महद् यक्ष्य' को जान लेता है व उसकी उपासना करता है वह स्वयं भी वैसा ही हो जाता है यहाँ पर 'यक्ष्य' शब्द 'पूज्य' अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है[41] एवं महद्‌यक्ष का प्रयोग ब्रह्म के विशेषण के रूप में हुआ है एवं यहाँ यक्ष का अर्थ पूजनीय किया है।[42] जैमिनीयब्राह्मण में भी 'महद् यक्ष' का वर्णन आया है।[43]

गोपथब्राह्मण में वर्णन है कि ब्रह्म की सर्वप्रथम यक्ष के रूप में प्रकट हुए थे एवं उन्होनें तप करके सृष्टि की रचना की। यहाँ पर यक्ष का अर्थ पूजनीय किया गया है।[44] शांखायनारण्यक में राक्षस व यक्ष आदि की हिसंक प्रवृत्ति का वर्णन प्राप्त होता है।[45]

ब्राह्मण व आरण्यकों में यक्ष की वैदिक काल के समान छवि दृष्टिगोचर होती है। यक्ष का पूज्य अर्थ में ग्रहण किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें आश्चर्यजनक कर्म करने वाला माना जाता था। इस प्रकार कहीं न कहीं उनका असामान्य स्वरूप हमें प्राप्त हो ही जाता है।

इस प्रकार वैदिककाल में यक्षों को पूजनीय समझा जाता था एवं उन्हें हवि व तर्पण (यज्ञ–भाग) भी अर्पित किया जाता था। परन्तु उनके लिए पृथक् से कोई यज्ञ–विशेष आयोजित नहीं किये जाते थे। देव, गन्धर्व, राक्षस, विप्र, साध्य आदि के सामान्य हवि–प्रदान–प्रवाह में यक्षों को सम्मिलित कर उन्हें भी हवि दे दी जाती थी। कहीं–कहीं उन्हें सुन्दरता का आदर्श माना गया है। इसके साथ ही कुछ स्थलों पर यक्ष–सम्बन्धी निमित्तों को अशुभ भी माना गया है, जिसमें इनकी छवि ने कुछ अतिप्राकृतिक (असामान्य) सा स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार के उद्धरण बहुशः प्राप्त होते हैं जो यक्ष को पुनः असामान्य भावात्मक पक्ष से सम्बद्ध करते हैं।

इस प्रकार वैदिक–साहित्य के विश्लेषण से यक्षों के विषय में कई तथ्य उजागर हो जाते हैं–

(1) प्रथमतः संहिताओं में यक्ष पद 'यज्ञ', 'पूजा', 'धन', 'दान', 'सत्कार', आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है एवं **ऋग्वेद (VII. 56.16)** में सर्वप्रथम जातिवाचक प्रयोग भी मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि यक्ष एक प्राचीनतम जाति रही होगी।

(2) इसके अतिरिक्त ब्रह्म के विशेषण के रूप में तथा आत्मा के अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है जिससे उसकी विविधता, रहस्यात्मकता तथा अस्पष्टता का भान होता है।

(3) ब्राह्मण व आरण्यकों में यक्षों की पूजनीय छवि पूर्ववत् विद्यमान तो रही है परन्तु वे आश्चर्यजनक व क्रूर छवि को लेकर भी प्रकट होते हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि महद् यक्ष की यक्ष की उपासना करने वाला उस जैसा ही हो जाता है अर्थात् तपस्या से यक्ष की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

1. अमरकोष:, प्रथमकाण्ड,स्वर्गलोक:,श्लोक-11
2. O.P. Bhardwaj : Yaksha Worship in Kurukshetra, ABORI-I, LXX, Pts. 1-4, p. 199; Monier Williams : Sanskrit English Diectionary, p. 838
3. वाचस्पत्यम्, भाग-6, पृ0 4768
4. द्र0 माधवीया धातुवृत्ति, सूत्र क्र.-137, 'यक्ष पूजायाम्' (चु.)
5. वाचस्पत्यम्, पृ04768
6. वी.एस. आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृ 522
7. संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ0 916
8. Monier Williams : Sanskrit Eng. Dic. ,p. 838
9. ऋग्वेद (सायण व दयानन्द भाष्य), ट्ण्ण्56ण्16
10. ऋग्वेद (वेंकटामाधव, सायण एवं दयानन्द भाष्य), ण्ण190ण्44
11. वही, **IV .3.13**
12. ऋग्वेद (वेंकट, सायण एवं दयानन्द भाष्य), ट्ण्70ण्4
13. ऋग्वेद, VII. 56.16 एवं श्रीपाद दामोदर सातवेकर ने सुबोध भाष्य में 1.190.4 – यजनीयः IV 3.13 यक्ष में: V. 70.4 अन्न काः VII. 56.16– यज्ञ का दर्शन करने आए का वर्णन किया है।
14. ऋग्वेद (वेंकट, सायण व सुबोध भाष्य), VII 61.5 चुंकि दयानन्दकृत ऋग्वेदभाष्य VII.61.2 तक ही मिलता है। अतः स्थानापन्न रूप में सातवलेकर कृत अर्थ दिया है।
15. ऋग्वेद, VII.88.6
16. वही, X. 88.13
17. एच.एच. विल्सन ने 1. 190.4 Receiving wordship; 3.13- Sacrifice; V 70.4- Bounty, VII.56 16- Gazing at a festival, VII- 61.5- Adoration; VII- 88.6 Adorable; X.88.13- Adorable deityअर्थ किया है।
18. Coomarswamy, A.K., Yaksas, Part-2, P.2

19. यजुर्वेद, 34.2: येन कर्माण्यतपसो मनीषिणों यज्ञे कृण्वान्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वम् प्रजानां यक्षमन्तः तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
20. काण्व–संहिता, ग्टप्प्: अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षिं च।। एवं 31.9, 31.46, 32.3, 32.55
21. सामवेद–संहिता, अनुवाद आर.टी.एच. ग्रिफिथ, 1.61: त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे। त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम्।।
22. अर्थर्ववेद, **VIII. 9.25**
23. वही, VIII. 9.26
24. वही, VIII. 9.8
25. द्र0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, केनोपनिषद्] III.2
26. अथर्ववेद, X.2.31-32
27. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरIII.2
28. केनोपनिषद् III2 पर शांकरभाष्यः किमिंद यक्ष पूज्यं महद्भूतमिति।।
29. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पृ० 30: केनोपानिषद् X.8.15
30. अथर्ववेद X.2..29–30
31. वही, X,2.23
32. वही, X 8.15 एवं तुलना करें–महाभारत, यक्ष–युधिष्ठिर–संवाद प्रसंग, III.208.2.
33. अथववेद, X 7-38
34. अथर्ववेद, X 8-43
35. वही,XI 2-24
36. वही, XI 6-10
37. अरूणःयक्षों की भारत को देन, पृ० 12
38. अथववेद, X2-32]Whitney's tr.
39. A.K. Coomarswamy: Yaksas, Part.2, P.2
40. तैत्तिरीयब्राह्मण, III. 1.1.1.1-21
41. वही, III.12.3.1 तपों ह यक्षं प्रथम संबभूव इति।
42. षड्विंशब्रह्मण, VI 6.3
43. एवं तुलना करे– शतपथ ब्राह्मण, चौखम्बा, संस्कृत संस्थान के प्रकाशन में सभी स्थलों पर 'यक्ष्य' शब्द के स्थान पर 'यक्षे' शब्द प्राप्त होता है।

44. वही XIV.8.5.1तद्वै तदेतदेव तदास। सत्यमेव स यो हैवमेतन्नमहद्यक्षम्प्रथमजं व्वहे..... सत्य होव ब्रहा।

45. गोपथब्राह्मण, 1.1.1.